धार्मिक भाषा का स्वरूप और लक्षण का विवेचन

धार्मिक भाषा के स्वरूप की व्याख्या, विचार की एक महत्वपूर्ण समस्या है। धर्म और ईश्वर मीमांसा की तार्किक प्रत्यक्षवादियों द्वारा स्थापित ~~है~~ निरर्थकता ने इस समस्या को और अधिक व्याख्यायित करने के लिए बाध्य कर दिया है। तार्किक प्रत्यक्षवादियों ने अपने तर्कों के बल पर धर्म और ईश्वर मीमांसा की तथाकथित निरर्थकता को प्रमाणित करने के संदर्भ में इस बात पर बल दिया है कि धार्मिक कथनों के साथ संज्ञानात्मक अर्थपूर्णता की बात नहीं की जा सकती है क्योंकि यह प्रकथन ना तो विश्लेषणात्मक प्रकथन की कोटि में और ना ही संश्लेषणात्मक प्रकथन की कोटि में, अतः यहाँ संज्ञानात्मक अर्थपूर्णता का अभाव होता है।

साधारणतः अपनी भावनाओं अथवा ज्ञानात्मक अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति के लिए हम भाषा के अन्तर्गत प्रकथनों को अपना माध्यम बनाते हैं और यही प्रकथन उस भाषा के स्वरूप का निर्धारण करते हैं।

अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या धार्मिक भाषा संज्ञानात्मक या तथ्यपरक है? इस प्रश्न के उत्तर में धार्मिक भाषा का स्पष्टीकरण निहित है अर्थात धार्मिक भाषा को तथ्यपरक ज्ञान के वर्ग में रखा जाए या नहीं यह विचारणीय प्रश्न है।

धार्मिक भाषा के संदर्भ में तीन सिद्धांत प्रचलित है —

1. संज्ञानात्मक → हीक (मरणोपरांत सत्यापन सिद्धांत)
2. असंज्ञानात्मक → एयर आदि (प्रमाणीकरण कर्ता असमर्थ)
3. अर्द्धसंज्ञानात्मक — हेयर ("ब्लिक")

(तिलिक + रैम्जे प्रतीक के रूप में)

संज्ञानात्मक सिद्धांत के समर्थक हिक तथा क्रोम्बी है। हिक के अनुसार धार्मिक कथन तथ्यबोधक होते है। हीक ईश्वरीय ज्ञान को आस्था परक/पारक मानते है तथा आस्था को संज्ञानात्मक ज्ञान के अंतर्गत रखते है। आस्थाजन्य ज्ञान की व्याख्या भी प्रत्यक्ष या नैतिक ज्ञान की चर्चा की तरह की जा सकती है। हीक के अनुसार, मानव को विश्व की ईश्वरवादी या अनीश्वरवादी व्याख्या करने की संज्ञानात्मक स्वतंत्रता है, जो ईश्वर प्रदत्त है। वास्तविक ईश्वरीय ज्ञान वही है जहाँ मानव अपनी स्वतंत्र इच्छा से ईश्वरीय उपस्थिति का बोध करें और उसके प्रति आत्मसमर्पण करें। ईश्वर एक स्वतंत्र और असीम सत्ता है जिसका बोध मानव को होता है।

हीक के अनुसार जब हम ईश्वर को सर्वशक्तिमान, दयालु, सर्वज्ञ कहते है, हम ईश्वर और उसके गुणों का तथ्यात्मक विवरण करते है क्योंकि यह भावना पर केन्द्रित है। इस मत की पुष्टि हेतु हीक 'मरणोत्तर सत्यापन सिद्धांत'

का सहारा लेते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार ईश्वरीय वास्तविकता को निश्चित रूप से प्रमाणित किया जा सकता है लेकिन यह इस जीवन में संभव नहीं है। मानव ईश्वर कथन का सत्यापन मरणोत्तर अनुभव के द्वारा ही कर सकता है। इनका यह सिद्धांत आत्मा की अमरता से जुड़ा हुआ है।

क्रोम्ब ने भी धार्मिक ज्ञान को संज्ञानात्मक माना है। इसके अनुसार धार्मिक कथन सत्य या मिथ्या प्रमाणित किए जा सकते हैं। इन्होंने आप्त्य के आधार पर आत्मा की अमरता संबंधी सिद्धांत को स्वीकार का 'मरणोत्तर जीवन' के अनुभव की व्याख्या में सफलता पाई है।

अंसज्ञानात्मक सिद्धांत के अंतर्गत पाश्चात्य धर्म दर्शन में एयर, हेयर तथा ब्रेथवेट जैसे विचारकों ने धार्मिक कथन को अंसज्ञानात्मक की श्रेणी में रखा है। एयर ईश्वर विज्ञान से संबंधित कथनों को अर्थहीन कहा देते हैं। यदि धार्मिक ज्ञान को ~~अनुभव~~ अनुभविक माना जाए तो इसे सत्यापनीय होना चाहिए लेकिन हम जानते हैं कि ईश्वर हमारे अनुभव की सीमा से परे है, ऐसी स्थिति में धार्मिक ज्ञान को सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता है इसलिए इसे तथ्यात्मक मानना संभव नहीं है। प्रागअनुभविक युक्ति के बल पर ईश्वरीय अस्तित्व को

प्रमाणित करना संभव नहीं है इसलिए धार्मिक कथन संज्ञानात्मक नहीं बल्कि असंज्ञानात्मक होते हैं।

एयर ने अपने सत्यापनीयता के सिद्धांत के बल पर रहस्यवादियों के इस दावे का खण्डन किया है कि ईश्वर का साक्षात अनुभव होता है। उनके अनुसार रहस्यवादियों का यह विचार आत्मविरोधी है क्योंकि एक ओर तो यह धार्मिक ज्ञान को स्पष्ट एवं निश्चित मानते हैं तथा दूसरी ओर अनिर्वचनीय मानते हैं।

हेयर ने धार्मिक ज्ञान को अपने 'बिलक सिद्धांत' के द्वारा असंज्ञानात्मक सिद्ध करने का प्रयास किया है क्योंकि ऐसे कथन के संबंध में सत्य अथवा मिथ्या का प्रश्न उठना समीचीन नहीं है। धार्मिक कथन जीवन और जगत के संबंध में धर्मपरायण व्यक्ति के अभिवृत्ति को ही व्यक्त करते हैं, जिन्हें हेयर 'बिलक' की संज्ञा देते हैं।

ब्रेथवेट के अनुसार धार्मिक ज्ञान अर्थपूर्ण और तथ्यपरक नहीं है। इसे सिद्ध करने के लिए उन्होंने तीन प्रकार के कथनों का उल्लेख किया है। वह है — (i) ऐसे कथन जो विशेष अनुभवात्मक तथ्यों से संबंधित है (ii) वैसे कथन जो वैज्ञानिक तथ्यों से संबंधित है (iii) तर्कशास्त्र और गणित से संबंधित कथन।

प्रथम दो वर्गों के कथन को तथ्यात्मक कथन या संज्ञानात्मक की संज्ञा दी है जबकि

तीसरे कथन को विश्लेषणात्मक कथन की संज्ञा दी है। इनके अनुसार उपरोक्त तीनों वर्गों में से किसी भी वर्ग के अंतर्गत धार्मिक कथन को नहीं रखा जा सकता है इसलिए उसे असंज्ञानात्मक कहना ही उचित होगा।

अर्द्ध-संज्ञानात्मक सिद्धांत के समर्थक एक्यूनस तथा टिलीक हैं। एक्यूनस ने धार्मिक ज्ञान को अस्पष्ट ज्ञान कहा है। ऐसा ज्ञान आस्था पर केन्द्रित होने के कारण अनिश्चित एवं अस्पष्ट होता है इसलिए धार्मिक ज्ञान को अर्द्ध संज्ञानात्मक के वर्ग में रखा है।

टिलीक ने 'प्रतीकात्मक सिद्धांत' द्वारा धार्मिक ज्ञान के स्वरूप पर प्रकाश डाला है। धार्मिक ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान है। धार्मिक प्रतीक जिस सत्ता की ओर संकेत करते हैं उन्हें उन प्रतीकों के अभाव में नहीं जाना जा सकता है और हम जानते हैं कि परम सत्ता निरुपाधिक सत्ता है इसलिए उनका ज्ञान संभव नहीं है। ईश्वर का अस्तित्व एवं गुण संबंधी विचार अस्पष्ट ज्ञान है। इन कथनों का संबंध तथ्य से नहीं होने के कारण इन्हें मात्र अर्द्ध संज्ञानात्मक ही कहा जा सकता है।

अतः स्पष्ट है कि धार्मिक भाषा के संबंध में उपरोक्त तीनों सिद्धांत उसके स्वरूप का निरूपण अलग-अलग ढंग से करते हैं। संज्ञानात्मक सिद्धांत उसे तथ्यपरक स्वीकार कर उसके सत्य

या असत्य होने का दावा करता है जबकि असंज्ञानात्मक सिद्धांत धार्मिक कथन को अर्थहीन स्वीकार करते हैं तथा इनके अनुसार धार्मिक ज्ञान तथ्यबोधक नहीं है। अर्द्ध-संज्ञानात्मक सिद्धांत धार्मिक ज्ञान को अस्पष्ट ज्ञान कहता है जिसे कभी भी तथ्य परक नहीं कहा जा सकता है।